चतुर्थ अध्याय

आलोच्य नाटकों में कथोपकथन और देशकाल-वातावरण।

आलोच्य नाटकों में कथोपकथन और देशकाल वातावरण

कथोपकथन नाटक का प्रधान एवं परमावश्यक तत्त्व हैं। नाटककार इसी एकमात्र उपकरण के माध्यम से नाटकीय वस्तु को गतिशील करने नई परिस्थितियों की सूचना देने, पात्रों के चरित्र को प्रस्फुटित करने तथा उनके अंतर्द्वंद्वों को प्रदर्शित करने उचित वातावरण प्रस्तुत करने एवं उद्देश्य के समष्टिगत प्रभाव को पूर्ण करने में सफल होता है। नि:संदेह नाटक के विभिन्न उपकरणों को एक सूत्र में पिरोकर नाटक का रूप प्रदान करनेवाला तथा नाट्यशरीर में सजीवता का संचार करनेवाला यही एकमात्र तत्त्व है।

कथोपकथन की दृष्टि से नाटकीय कथावस्तु के तीन प्रकार होते हैं -

1. श्राव्य या सर्वश्राव्य -

जो कथोपकथन सबके सुनने के लिए हो, इसी को प्रकट या प्रकाशन भी कहते हैं। जिसे रंगमंच के अभिनय स्थल पर सभी पात्र सुनते हैं।

2. अश्राव्य -

जो संवाद दूसरें को सुनने के नहीं होते इसे अश्राव्य या 'स्वगत' भी कहते हैं। भावावेष में लोग स्वगत बोलते हैं ; किंतु यह बड़ा नहीं होना चाहिए। आजकल स्वगत की अस्वाभाविकता मिटाने के लिए एक विश्वास पात्र को मंच पर ले आते हैं, जिसके आगे पात्र अपना ह्रदय खोलकर रख देता है। इससे आत्मविश्लेषण अच्छा होता है।

3. नियत श्राव्य -

नियत श्राव्य कथोपकथन जो किसी विशिष्ठ व्यक्ति के ही सुनने के लिए व्यवहृत होते हैं। अर्थात् इसे कुछ अभिष्ट पात्र ही सुनते हैं।

नियत श्राव्य के दो भेद होते हैं - 1. जनांतिक, 2. अपवारित.

अपवारित नियत श्राव्य वहाँ होता है जहाँ सामने विद्यमान पात्र की ओर से मुख मोड़कर किसी रहस्य का उद्घाटन किया जाए अथवा उससे छिपाकर कटाक्ष किया जाए।

जनांतिक नियत श्राव्य वहाँ होता है जहाँ अन्य पात्र उपस्थित होते हुए भी दो पात्र इस प्रकार बात करें कि मानो उन्हें दूसरों को कुछ सुनाना अभिष्ट नहीं। जनांतिक में अँगूठा और कन अँगुली को छोड़कर तीन अँगूलियों की पताका-सी बनाकर उसकी ओट में एक या दो पात्रों को छोड़कर अन्य पात्रों से बात की जाती है।

कथोपकथन का एक रूप आकाशभाषित भी माना गया है। इसमें पात्र आकाश की ओर देखता हुआ कुछ सुनने को दुहराता और स्वयं उनका उत्तर देता है। बिना किसी के बोले 'क्या कह रहे हो' आदि प्रश्नों को करता है, और उसका उत्तर भी कुछ मन से बनाकर देता है। यही क्रम चलता है। इसे आकाशभाषित के नाम से पुकारते हैं। यह आकाशवाणी नहीं है।

संवादों का सरल, संयत, सुबोध, सजीव, प्रभावोत्पादक एवं कलात्मक होना आवश्यक है। उनमें प्रवाह एवं चपलता के तत्त्व भी अनिवार्य रूप में आने चाहिए। इसके अतिरिक्त इनका सुगठित, व्यंजनात्मक, सारगर्भित एवं तर्कपूर्ण होना अनिवार्य है। इनमें सहज विनोद व्यंग्य एवं वाक्पटुता आदि तत्त्वों का समावेश भी किया जा सकता है। किंतु इनमें उत्तर प्रत्युत्तर की संगति एवं क्रम का ठीक होना अपेक्षित है। लंबे-लंबे कथोपकथन शब्दाडंबर अथवा गंभीरतम भावों से भाराक्रांत और क्लिष्ट कथोपकथन नाटक में नही रहने चाहिए।

कथोपकथन के गुण -

1. स्वाभाविकता
2. संक्षिप्तता
3. प्रसंगानुकूलता
4. सरलता
5. पात्रानुकूलता
6. गतिशीलता
7. मनोरंजनपूर्णता
8. चरित्र-प्रकाशन की क्षमता
9. मनोवैज्ञानिकता
10. उपयुक्तता
11. संबद्धता
12. रोचकता
13. मार्मिकता
14. प्रभाव क्षमता।

1. स्वाभाविकता -

नाटकीय संवादों में स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। अस्वाभाविक संवाद जहाँ बड़े अटपटे लगते हैं, वहाँ कथा की गति को भी अवरूद्ध करते हैं। अस्वाभाविक संवाद दर्शकों का ध्यान

पात्रों की ओर से हटा देते हैं। इसलिए नाटककार को इस तथ्य को ध्यान में रखकर चलना चाहिए कि उसका कोई भी संवाद ऊलजलूल न हो।

2. ***संक्षिप्तता*** -

नाटक में दीर्घ और संक्षिप्त दोनों प्रकार के संवाद हुआ करते हैं। किंतु संक्षिप्त संवाद योजना ही अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है। दीर्घ संवाद एक तो नाटकीय कथा की गति को बोझिल कर देते हैं, दूसरे एक ही पात्र को बहुत देर तक बोलने सुनने पर दर्शक या पाठक उब उठता है।

3. ***प्रसंगानुकूलता*** -

नाटकीय पात्रों के संवादों में प्रसंगानुकूलता भी अपेक्षित है। यदि पात्र प्रसंग अथवा अवसर के अनुकूल कथन नहीं करता तो वह असंगत ही प्रलाप कहा जाएगा। वास्तव में पात्रों को समय और स्थिति के अनुरूप ही संवाद बोलने चाहिए।

4. ***सरलता*** -

नाटक के पात्रों के संवाद सहज और सरल संवेद्य होने चाहिए। दुरूहता नाटक के कथ्य को प्रवाहहीन और प्रभावहीन बना देती हैं। संवादों की सरलता नाटक की अभिनेयता में भी सहायक होती हैं।

5. ***पात्रानुकूलता*** -

नाटक में प्रत्युक्त संवादों का स्तर पात्रों के अनुकूल होना चाहिए। अर्थात् जो पात्र सामाजिक स्तर, शैक्षिक स्तर या जिस स्तर का हो उसके संवाद भी उसी स्तर के होने चाहिए।

6. ***गतिशीलता*** -

गतिशीलता संवादों का अन्य महत्त्वपूर्ण गुण है। गतिशीलता से यह आशय है कि पात्रों के संवाद नाटकीय कथा को शीघ्रता से आगे बढ़ाने में योग दे सके। यदि पात्रों के संवाद गतिशील नहीं हैं तो कथा की गति भी अवरूद्ध हो जाती है।

7. *मनोरंजनपूर्णता अथवा व्यंग्यात्मकता -*

नाटकीय कथा को सप्राण एवं रोचक बनाने के लिए उसके संवादों में हास्य अथवा व्यंग्य का समावेश अवश्य होना चाहिए। कथानक के बीच-बीच में हल्का-फुल्का हास्य जहाँ दर्शकों में ताजगी भरता है, वही व्यंग्य कथावस्तु को वक्रता के साथ संप्रेष्य बनाता है।

8. *चरित्र प्रकाशन की क्षमता -*

नाटक के संवाद ऐसे होने चाहिए जो पात्रों का चरित्र उद्‌घाटन करने की क्षमता रखते हो। पात्रों की मनोदशा एवं उनके आतंरिक उहापोह को संवादों से जाना जा सकता है।

9. *मनोवैज्ञानिकता -*

आधुनिक नाटकों में पात्रों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया जाता है। इसलिए नाटक के पात्रों के संवादों के माध्यम से उनकी मानसिक स्थिति, ऊहापोह और अंतर्द्वंद्व का उद्‌घाटन भी करते हैं।

10. *उपयुक्तता -*

उपयुक्तता से आशय संवादों के घटना, अवसर एवं वातावरण से उपयुक्त होने से है। इससे संवादों में सजीवता आती है। पात्रों का वार्तालाप प्रसंगानुकूल लगता है और अस्वाभाविकता आदि दोषों का परिहार होता है।

11. *संबद्‌धता -*

पात्रों के संवाद, कथानक और पात्रों से संबद्‌ध होने चाहिए।

12. *रोचकता -*

नाटक में वर्णित संवादों में रोचकता का गुण भी अपेक्षित है। यदि उनमें रोचकता नहीं होगी तो न वे कथावस्तु को उपयुक्त ढंग से आगे बढ़ाने में समर्थ होंगे और न ही दर्शकों पर उनका कोई अपेक्षित प्रभाव पड़ेगा।

13. मार्मिकता -

नाटकों में संवादों की योजना ऐसी होनी चाहिए कि उसमें पाठक-दर्शक के हृदय को छूने की क्षमता हो। उन पर प्रभाव डालने की शक्ति हो। दर्शक-पाठक नाटकीय कथा में रम सके, उससे तादात्म्य स्थापित कर सकें।

14. प्रभावक्षमता -

पात्रों के संवाद जितने अधिक प्रभावशाली होंगे, उनकी रमणीयता में उतनी ही वृद्धि होगी।

आलोच्य नाटकों के संवादों की समीक्षा -

1. स्वाभाविकता -

'कोणार्क' नाटक के संवादों में सर्वत्र स्वाभाविकता उपलब्ध होती है। विशु एवं धर्मपद का निम्नलिखित संवाद अपनी सहज स्वाभाविकता के लिए दृष्टव्य है -

''विशु- वह अभागा श्रीधर मैं ही हूँ। विशु तो मेरा छद्म नाम है जो मैंने शबर अटीविका से भाग आने पर रख लिया था। मैं ही वह श्रीधर हूँ, जिसके कारण तुम्हारी माँ को इतने कष्ट उठाने पड़े। मैं ही वह कठोर, पापी निर्दय तुम्हारा पिता हूँ, जिसने (अपने चेहरे पर हाथ रख लेता है).....

धर्मपद- (विशु के निकट जाकर मंद स्वर में) आचार्य ?

विशु- (हल्के स्वर में) मुझे पिता कहो, धर्मा !

धर्मपद- पिता ! (विशु के चरणों के पास धरती पर बैठता हुआ, चावभरे स्वर में) क्या आपको मेरी माँ की याद आती है।

विशु - बीस बरस से उस याद के ही बल पर जी रहा हूँ।''[1]

यहाँ सत्रह वर्ष के बाद मिले पिता-पुत्र विशु और धर्मपद के संवादों में हमें स्वभाविकता दिखाई देती है।

'पहला राजा' इस नाटक में भी कवष और पृथु के संवादों में स्वभाविकता झलकती है -

''कवष- यह क्या पृथु ! तुम भी आर्य नाम की दुहाई देने लगे। गुरूजी का आदेश क्या हुआ ? छिः .... उर्वी आर्य विरोधी दस्यु और मैं आर्यों का दास निषाद।

पृथु- मुझे उत्तेजित न करो। कवष, मैं इन डाकुओं का विनाश करने के लिए वचनबद्ध हूँ।''[2]

'शारदीया' नाटक के संवादों में स्वाभाविकता का गुण सर्वत्र झलकता है। नरसिंह और बायजाबाई के संवादों से यह स्वाभाविकता दिखाई देती है।

''नरसिंह- बायजाबाई, मैं कागल गया था। कागल हम लोगों की जन्मभूमि ! कागल हम लोगों की पुण्यस्थली ! (नि:श्वास) लेकिन देखा कि न वह कागल है और न तुम।

बायजा- (उदास) तुमने सब सुना होगा।

नरसिंह- सब कुछ सुना और देखा। तुम्हारे पिताजी के गढ़ पर यशवंतराव जमे हुए हैं !..... उलटे पाँव लौट आया।

बायजा- बाबा कहते हैं जब तक कागल को फिर से न पा लूंगा तब तक सखाराम नाम नहीं। नाना साहब के यहाँ नौकरी पहले भी कर चुके थे। सौ सवारों की सरदारी मिली है।

नरसिंह- और तुम ? कागल की याद तुम्हें नहीं आई ?

बायजा- (नि:श्वास) नरसिंह अगर माँ रहती और तुम न आते तो मैं बाबा के पाँव ..... पर नरसिंह, माँ (आविष्ट स्वर) तो गई। और .... और तुम गायब हो गए। ....नरसिंह क्यों चले गए तुम।''[3]

यहाँ बरसों बाद मिले बायजा और नरसिंह इन प्रेमियों के संवादों में स्वाभाविकता दिखाई देती है।

2. संक्षिप्तता -

'कोणार्क' नाटक में आरंभ से अंत तक संवादों में संक्षिप्तता है। और ये संक्षिप्त संवाद कथा की गति को तीव्रता से आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। नाटक का प्रत्येक पात्र छोट-छोटे वाक्यों में अपनी बात कह देता है और इस प्रकार कथा क्रम को तीव्रता से आगे बढ़ाने में पर्याप्त सहायता देता है। संक्षिप्त संवाद-योजना का उदाहरण-

''नरसिंहदेव- क्या है महेंद्र ?

महेंद्र- (चिंतित स्वर में) महामात्य तो अभी तक नही आए देव। किंतु कुछ लोग आते दीख पड़ते हैं।

नरसिंह- वही होंगे। कितनी दूर हैं।

महेंद्र- निकट ही। किंतु वे लोग आ रहे हैं पश्चिम से नहीं उत्तर और दक्षिण से भी, अनेक रथ और सैनिक। धूल आकाश तक फैल रही है।

नरसिंहदेव- जान पड़ता है, माह्मात्य ने मांड़लिकों और सामंतों को भी आज के समारोह में सम्मिलित होने के लिए बुला रखा है।

महेंद्र- किंतु इस निमंत्रण को महाराज से गुप्त रखने का आशय ?

नरसिंहदेव- कौतुक !

महेंद्र- नहीं देव।

नरसिंहदेव- तब ?

महेंद्र- (रहस्यपूर्ण मुद्रा और गहरा स्वर) षड्यंत्र !

नरसिंह- (चौंककर) महेंद्र।''[4]

इस प्रकार की संक्षिप्त संवाद योजना नाटक में सर्वत्र दिखाई देती है।

'पहला राजा' इस नाटक के संवादों में हमें संक्षिप्तता दिखाई देती है। जिसके द्वारा नाटक के पात्रों का चरित्रोद्घाटन भी होता है। अर्चना और पृथु के संवाद में संक्षिप्तता दिखाई देती है -

''अर्चना- फिर बदल जाता है ?

पृथु- एक स्त्री की आकृति।

अर्चना- वही नग्न चण्डी ?

पृथु- नहीं।

अर्चना- तब ?

पृथु- (रूक कर) कोई और नारी। पहचानी-सी और फिर भी अपरिचित-सी। धूमिल भी.... और ..... स्पष्ट भी।

अर्चना- और आप धनुष्य झुका लेते हैं।''[5]

'शारदीया' इस नाटक के संवाद भी संक्षिप्त होते हुए पात्रों की मानसिकता पाठक या दर्शकों के सामने स्पष्ट करते हैं। उदा.-

''जिन्से- (पुकारते हैं) नरसिंहराव।

नरसिंहराव- (सिसकता है)

जिन्से- नरसिंहराव।

नरसिंह- (उसी भांति) नहीं-नहीं।

जिन्स- नरसिंहराव इधर देखो।

नरसिंह - कौन ? (आवाज पहचानकर मस्तक उठाता है। कौन सरदार जिन्सेवाले ?''[6]

यहाँ नरसिंहराव के मन की उदासी तथा बेचैनी प्रकट होती है।

3. प्रसंगानुकूलता -

'कोणार्क' नाटक के पात्र समय और स्थिति के अनुरूप ही संवाद बोलते हैं। कोणार्क नाटक के संवादों में प्रसंगानुकूलता का गुण प्रभूत मात्रा में मिलता है। उदा.-

''प्रतिहारी - प्रभो राजधानी में चालुक्य के दंड़नायकों ने पहले ही राजप्रसाद पर अपना अधिकार जमा लिया है। यही शैवालिक कहता था।

नरसिंह- तोषालि और कणिका के सामंत ?

शैवालिक- वे सभी हमारे साथ है।

नरसिंह- उफ् नीच पामर ! सबके सब विश्वास घाती।

शैवालिक - राज्यसत्ता की भित्ति विश्वास नहीं, बल है।

महेंद्र- बल ? .... यवन विजेता पराक्रमी नरेश बलहीन कब से हो गए ?

शैवालिक- यवन विजेता की सेना कहाँ है ?

नरसिंह - सेना ! यदि हमें इस दुरभि संधि का लेशमात्र भी आभास होता तो हमारी सेना...

शैवालिक- बंग देश में न होती ! किंतु अब पछताने से क्या होता है ? आपके सामने एक ही मार्ग है।

नरसिंह- आत्मसमर्पण ? कभी नहीं।

शैवालिक- तब आत्म-हत्या युद्ध में पराजित होकर बंदी होना आत्महत्या के तुल्य होगा।''[7]

'कोणार्क' नाटक में इस प्रकार के अनेक संवाद प्रयुक्त हैं जो प्रसंग एवं समय के सर्वथा अनुकूल हैं।

'पहला राजा' इस नाटक के संवाद भी प्रसंगानुकूल हैं और जो कथावस्तु को आगे बढ़ाने की क्षमता भी रखते हैं।

दासी- गजब हो गया।

अर्चना- क्या हुआ।

दासी- देवी, राजा घिर गए हैं।

अर्चना- घिर गए हैं।

दासी- उन्होंने आजगव धनुष्य अलग उठाकर रख दिया। खड्ग को छुआ तक नहीं।.... निहत्ये भीड़ में घुस गए और उस तरफ बढ़ने लगे जहाँ सूत और मागध पर भीड़ बेतहाशा प्रहार कर रही थी।

अर्चना - (उद्वेग से) प्रहार ? .... मैं जा रही हूँ।

गर्ग- अर्चना। तनिक ठहरो।

अर्चना- नहीं पिताजी ! आर्यपुत्र के प्राणों पर खतरा है। (जाते हुए) मुझे जाना है।''[8]

इस प्रकार 'पहला राजा' इस नाटक के सभी संवाद प्रसंगानुकूल हैं।

'शारदीया' इस नाटक के संवादों में प्रसंगानुकूलता समय तथा स्थिति के अनुरूप दिखाई देती है। बायजाबाई और नरसिंह का संवाद कितना प्रसंगानुकूल है -

''नरसिंह- (कोमल स्वर) शारदीया रोती नहीं ..... अपनी धवल मुस्कान के साथ मुझे विदा करो। इसी ने मेरा साथ दिया है। यही मेरा साथ देगी।

बायजा- (कुछ रूक कर रूद्ध स्वर में) नरसिंह ! अपनी कटार देना ..... (कटार लेती है)

नरसिंह- यह क्या कर रही हो ?

(बायजाबाई - बांयी उंगली में कटार से घाव करती है रक्त निकल पड़ता है।)

बायजा- रक्त का टीका।.... मस्तक आगे करो नरसिंह (टीका लगाते हुए) विजय लक्ष्मी तुम्हारी सहायता करे .... और मेरी भी।''[9]

इस प्रकार के अनेक संवाद 'शारदीया' इस नाटक में दिखाई देते हैं।

4. सरलता -

'कोणार्क' नाटक के संवादों में सरलता यह गुण भी सर्वत्र मिलता है। उसके संवादों में सरलता के साथ ही चुस्ती, चुटीलापन और त्वरामूलकता भी है। चालुक्य, विशु एवं धर्मपद का यह संवाद इस दृष्टि से प्रस्तुत किया है -

''विशु- आर्य के आने की कोई पूर्व सूचना नहीं मिली ?

चालुक्य - सूचना देता तो तुम लोगों का भंडाफोड़ कैसे होता ?

विशु- जी !

चालुक्य- राजनगरी में मैंने ठीक सुना था कि कोणार्क में राज्य कोष का धन नष्ट हो रहा है। न शिल्पी लोग ठीक काम कर रहे हैं न मजदूर। दस दिन हो गए कलश तक स्थापित न हो सका ?

विशु- हम लोग बराबर उसी की चेष्टा में लगे हुए हैं।

चालुक्य- (मुँह बनाते हुए) चेष्टा में लगे हुए हैं ..... यहाँ तो मैं देखता हूँ गप्पे हो रही हैं। (सहसा धर्मपद पर दृष्टि पड़ जाती है, इशारा करते हुए) और यह युवक यहाँ क्यों खड़ा है।

धर्मपद - मैं ? मैं आचार्य के सामने शिल्पियों की दु:ख गाथा कह रहा था।

चालुक्य- शिल्पियों की दु:ख गाथा ? प्रतिहारी, इसे धक्का देकर बाहर निकालो। मुफ्तखोर कहीं का ?।''[10]

'पहला राजा' इस नाटक के पात्रों के संवादों में हमें सरलता दिखाई देती है। सूत, मागध तथा पृथु के संवादों से यह सरलता उजागर होती है।

''मागध- हमे अनुमति दें, राजन्।

पृथु- (घूमकर उनकी ओर देखता है) सूतमागध। यशोगाथा की औषधि हर रोगी पर काम नहीं करती।

सूत- रोगी ?

मागध- राजन् आपके प्रताप से ब्रह्मार्त की जनता के सब रोग शोक समाप्त हो गए।

पृथु- अगर मैं कहूँ कि रोगी मैं हूँ ?

मागध- आप ?

सूत- परिहास कर रहे हैं राजन्।

पृथु- सुनिए आप स्तुति कीजिए, लेकिन मेरी नहीं देवताओं की !''[11]

इस प्रकार 'पहला राजा' नाटक के पात्रों के संवादों में सरलता हमें दिखाई देती है।

'शारदीया' नाटक के संवादों में भी सरलता यह गुण विद्यमान है। सिंधिया और शर्जेराव के संवादों से यह सरलता झलकती है -

"सिंधिया- घाटगे जी आप बात को बहुत जल्दी समझते हैं।

शर्जेराव- और फिर आपके अपने खर्चों की भी तो कमी नहीं।

सिंधिया- आप देख ही रहे हैं। इतनी बड़ी फौज और तोपखाना।"[12]

इस प्रकार 'शारदीया' के संवादों में सरलता के साथ नाटक की वस्तु को प्रस्तुत किया गया है।

5. पात्रानुकूलता -

'कोणार्क' नाटक के संवादों में पात्रानुकूलता के दर्शन भी होते हैं। नाटक का प्रत्येक पात्र अपने स्तर के अनुकूल संवाद बोलता है। धर्मपद अन्याय का प्रतिकार करनेवाला, स्पष्ट वक्ता एवं तर्कशील युवा कलाकार है। राजदरबार के नियमों से सर्वथा अपरिचित। इसलिए इसके संवादों में निश्चलता एवं बनावट हीनता मिलती है। दूसरी ओर विशु राजशिल्पी है इसलिए उसके संवादों में स्वाभाविक विनय एवं सम्मान भावना के दर्शन होते हैं। यही बात अन्य पात्रों के संवादों के संबंध में कही जा सकती है।

'शारदीया' इस नाटक के संवाद भी पात्रानुकूल हैं। इस नाटक के पात्र जिस स्तर के हैं उसी स्तर को छोड़कर संवाद करते नहीं। यहाँ नरसिंहराव प्यार को पाने के लिए छटपटानेवाला एक प्रेमी, सच्चा कलाकार और वीर योद्धा है और उसी के अनुरूप उसके संवाद हैं। दौलतराव सिंधिया ग्वालियर राज्य नरेश तथा मराठा सरदारों में अग्रगण्य नेताओं में एक होने के कारण उनके संवाद भी उसी प्रकार के हैं। शर्जेराव घाटगे के संवादों में हमें हर समय बदले की भावना दिखाई देती है। इसी प्रकार नाटक के अन्य पात्रों के संवाद भी पात्रानुकूल हैं।

'पहला राजा' इस नाटक के संवाद भी पात्रानुकूल हैं। प्रत्येक पात्र के संवादों से उस पात्र के चरित्र का उद्घाटन होता है। यहाँ पृथु एक राजा होने के कारण उसके संवादों में हमें शालीनता तथा प्रजावत्सलता दिखाई देती है। शुक्राचार्य के संवादों से शुक्रनीति तथा अन्य मुनियों के संवादों से उनकी कूटनीति का पता हमें लगता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के प्रत्येक संवादों में हमें पात्रानुकूलता दिखाई देती है।

6. गतिशीलता -

'कोणार्क' नाटक के संवादों में गतिशीलता अधिकतम मिलती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''धर्मपद- ये चारों प्रतिहारी गण, सिंहद्वार पर शिल्पियों के साथ व्यूह की रचना करेंगें। (प्रतिहारियों का प्रस्थान) मैं शीघ्र बाहर जाकर शिल्पियों और मजदूरों को टोलियों में बांटता हूँ (तीसरे शिल्पी से) गजाधरजी आप अस्त्रों को एकत्र करें।

गजाधर- मैं अभी जाता हूँ। (प्रस्थान)

धर्मपद- और आचार्य सौम्यश्री, आप ?

सौम्य- मुझे केवल नाट्याचार्य न समझो धर्मपद ?

धर्मपद- आर्य आप आचार्य विशु के साथ नृत्य मंड़ली की सहायता से घायलों की शुश्रूषा का भार ले।

नरसिंह- और तुम धर्मपद ?

धर्मपद- आज्ञा हो तो मैं नट मंदिर की छत से निर्देशन करता रहूँगा ?

नरसिंह- शत्रू के बाण उधर ही आएँगे।

धर्मपद- उसके लिए प्रस्तुत हूँ महाराज।''[13]

'पहला राजा' नाटक के संवाद गतिशील हैं। नाटकीय कथा ऐसे संवादों से शीघ्रता से आगे बढ़ती है। कवष और पृथु का यह संवाद उदाहरण के लिए द्रष्टव्य है -

''पृथु - मुझे उत्तेजित न करो। कवष मैं इन डाकुओं का विनाश करने के लिए वचनबद्ध हूँ।

कवष- लेकिन उर्वी कहती है वे लोग डाकू नहीं है। लूटपाट उनका पेशा नहीं है।

पृथु- तब आश्रमों पर उनके हमले ?

कवष- एक जमाने में ब्रह्मावर्त के आर्यों और इंद्र ने इनके नगरों को नष्ट किया, सिंधु इरावती और सरस्वती के तटपर वे जगमगाते नगर वीरान हो गए। उन्हें डर है कि अब ब्रह्मावर्त के मुनि अपने यज्ञों के नाम पर जंगलों को काट रहे हैं। मिट्टि बहकर सरस्वती की धारा को बंद कर रही है। इसतरह उनकी बची-खुची खेती ही मटियामेट हो जाएगी।

पृथु- देखता हूँ इतनी थोड़ी-सी देर में तुम्हें उर्वी ने खूब पढ़ाया है।

कवष- चलो पृथु मैं तुम और उर्वी सरस्वती की धारा को फिर से बहाने की तदबीरें खोजें और यों इस झगड़े की जड़ ही दूर कर दें।''[14]

'शारदीया' के संवादों में गतिशीलता अत्यधिक रूप में दिखाई देती हैं। इन संवादों के द्‌वारा कई पात्रों का चरित्रांकन भी हुआ है। उदा.-

''नरसिंह- कल सवेरे उस तौल का मौका आ रहा है, भाऊ साहब।

फडके- यह सुनाई है तुमने पते की बात, नरसिंहराव। जल्दी बताओ जो कल करना है उसे आज ही न कर डालें।

भाऊ- उतावले न बनो बाबा फडके।.... नरसिंहराव ठीक से बताओ। कल कैसे मौका मिलेगा ? तुमने अभी कहा कि आज रात को जश्न है।

नरसिंह- उनका जश्न हमारे लिए सुनहरा मौका है।''[15]

इस प्रकार के गतिशील संवाद पूरे नाटक में दिखाई देते हैं। जिनके द्‌वारा कथा वस्तु को गति मिलती है।

7. मनोरंजनपूर्णता / व्यंग्यात्मकता -

'कोणार्क' नाटक में हास्य कथावस्तु के विपरीत पड़ता इसलिए उसके संवादों में हास्य की नियोजना नहीं की गई है। व्यंग्य कोणार्क की कथावस्तु में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। धर्मपद और महाराज नरसिंहदेव के संवादों में व्यंग्य की स्पष्ट छटा देखी जा सकती है -

''सौम्य- महाराज की आज्ञा थी कि यदि सात दिन के अंदर 'कोणार्क' पूरा न होगा, तो सारे शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे ?

नरसिंह- हमारी आज्ञा ?

विशु- तो आपकी यह आज्ञा नहीं थी ? (उत्सुक) कह दीजिए देव, कह दीजिए कि महामात्य राजराज चालुक्य के शब्द झूठे थे।

महेंद्र- महामात्य !

नरसिंह- चालुक्य ने तुम से कहा ? ओह .... (कुछ सोचकर फिर किंचित हँसते हुए) उन्होंने शायद तुम्हें यूँही धमकी दी होगी। उनका अभिप्राय तुम लोग नहीं समझे।

धर्मपद- अभिप्राय: को समझना उन लोगों के लिए कठिन नहीं था, जिनके जीवन पर काले बादलों की छाया की तरह महामंत्री का भय फैला हुआ है।

नरसिंह- कौन है वे ?

धर्मपद- वे ही जो उच्च सम्मिलित स्वर में कुछ देर हुए आपकी जयजयकार कर रहे थे, देव, वे अपने को मिटाकर सौंदर्यमयी दुनिया बनानेवाले शिल्पी और मूर्तिकार।''[16]

'पहला राजा' नाटक में भी व्यंग्य दिखाई देता है।

''दासी- आपके मुख से 'देवी' शब्द अटपटा लगता है, आचार्य !

शुक्राचार्य- वाचाल दासी, अपनी स्वामिनी को सूचना दो, हम लोग उन से मिलने के इच्छुक हैं।

दासी- (किंचित व्यंग्य से) स्वागत है, पुरब मेघ यज्ञ के होताओं का।''[17]

'शारदीया' इस नाटक में नरसिंह और बायजाबाई के संवादों में हमें व्यंग्य दिखाई देता है-

''नरसिंह- हैदराबाद की बेगमें भी देखी और मुँबई में फिरंगियों की मेमें भी।

बायजा- हूँ ..... (व्यंग्य) तो दो बरस अच्छे कटे।

नरसिंह- आज उषा की एक उज्ज्वल किरण दो पल को चमकी और तब मालूम हुआ कि वे दो बरस तो नींद में गुजरे थे।

बायजा- ओहो ! पर उषा की रेखा सपनों की परियों का मुकाबिला क्या करेगी ?''[18]

इस प्रकार के व्यंग्यात्मक संवाद अनुरूप स्थन तथान समय पर दिखाई देते हैं।

8. चरित्र- प्रकाशन की क्षमता -

'कोणार्क' नाटक में पात्रों की आंतरिक मनोदशा व्यक्त करनेवाले संवाद हैं। यह संवाद दो प्रकार के होते हैं - प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष रूप से चरित्र प्रकाशन वहाँ पर होता है जब दो पात्रों के वार्तालाप से सीधे उनके चरित्रों पर प्रकाश पड़े किंतु अप्रत्यक्ष विधि वह है जब दो पात्र अपने वार्तालापों से अन्य पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करें। प्राय: नाटक में दोनों प्रकार के संवाद ही प्रयुक्त किए जाते हैं। 'कोणार्क' में भी इन दोनों प्रकार के संवादों के दर्शन हम करते हैं। जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से चरित्र प्रकाशन करते हैं।

'पहला राजा' तथा 'शारदीया' नाटक में भी दोनों प्रकार के संवाद दिखाई देते हैं। जिसके माध्यम से पात्र के चरित्र का उद्घाटन अपने आप होता है।

9. मनोवैज्ञानिकता -

'कोणार्क' नाटक में विशु एवं धर्मपद के संवादों में मनोवैज्ञानिकता यह गुणविशेष रूप से

दिखाई देता है। विशु के संवादों में उनकी प्रणय भावना, आत्मा-निषेध, आत्मछल एवं ममता का सुंदर विश्लेषण हुआ है। इसी प्रकार धर्मपद की विद्रोहशीलता को भी संवादों के माध्यम से ही मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति मिली है। अपने पुत्र को आततायियों के सम्मुख मृत्युन्मुख देखकर विशु का ह्रदय विक्षुब्ध हो उठता है। इस उदाहरण से विशु की दशा का चित्रण हुआ है -

''विशु- (साष्टांग अवस्था में रूंधे गले से) हे सूर्य भगवान्। हे भुवन भास्कर ! बारह बरस तक दत्तचित्र हो मैंने तुम्हारे योग्य यह अभूतपूर्व गृह तैयार किया। आज जब उस लगन और तपस्या के बाद तुम्हारी उपासना का अवसर आया, तो तुम्हारे शिल्पी को ठुकरानेवाले, उनके निर्दोष रक्त से रंगे हाथ तुम्हें अपनाने आ रहे हैं। भगवान्, मैं यह कैसे सह सकता हूँ ? तुम, मेरे सारे जगत् के प्रतिपालक हो ; पर मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि मैं तुम्हारा निर्माता हूँ। तुम मेरे हो देव ! तुम्हें मेरा कहा करना होगा। 'कोणार्क' शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं हो सकता। मैं और तुम मिलकर ऐसा नहीं होने देंगे।.... नहीं ठीक हैं न मेरे भगवान् ?''[19]

'पहला राजा' इस नाटक में हमें पृथु के संवादों द्वारा उसकी प्रणय-भावना तथा राजकाज के प्रति उसकी चिंता प्रकट हुई है -

''पृथु- (सरोष और सावेश)..... उर्वी ! उर्वी ! उर्वी ! बंद करो यह रटन। उस दस्युकन्या की याद के कोयले भी ठंड़े हो चुके हैं।..... (कुछ समझकर अर्चना के निकट जाकर) अर्चि, सुनो !..... एक तराजू है मेरा तन-मन। एक पलड़े पर तुम्हारे अलिंगन का सोना और दूसरे पर चुनौतियों का भार।.... अगर केवल..... केवल प्यार के सम्मोहन में खो जाऊँ तो ..... तो तराजू के पलड़े, चंचल हो जाते हैं। आर्चि.....।''[20]

इस प्रकार की मनोवैज्ञानिकता अनेक पात्रों के संवादों से प्रकट होती है।

'शारदीया' इस नाटक में भी नरसिंह और बायजाबाई के संवादों से उनकी मानसिक स्थिति तथा अंतर्द्वंद्व प्रकट होता है।

''बायजा- (नि.श्वास) सौदागर फिर अपने काफिले को लौट चला।

नरसिंह- बायजाबाई यह दूसरा काफिला है। एक पूंजी इकठ्ठी कर ली। अब दूसरी पूँजी जमा करनी है। वह जो किसी मराठे का आभूषण है। मेरी तलवार को रक्त का शृंगार चाहिए।

बायजा- (पीड़ित स्वर) नरसिंह, मैं मुस्कराऊं या आँसू गिराऊं।''[21]

इस प्रकार के संवाद शारदीया नाटक में हमें देखने को मिलते हैं जिससे पात्रों की मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट होती है।

10. उपयुक्तता -

नाटक के संवादों में घटना भाव और अवसर के उपयुक्त दृष्टिकोण होना चाहिए। उपयुक्त दृष्टिकोण जिन संवादों में नहीं होता ऐसे संवाद दोषमय होते हैं।

'कोणार्क', 'पहला राजा' और 'शारदीया' इन नाटकों के संवादों में उपयुक्तता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। इसके कारण संवादों में सजीवता आई है। पात्रों का वार्तालाप प्रसंगानुकूल लगता है।

11. संबद्धता -

'कोणार्क', 'पहला राजा' और 'शारदीया' इन तीनों नाटकों में संबद्धता यह गुण मिलता है। इन नाटकों के पात्रों के संवाद कथानक से मेल खाते हुए और कथा गति के अनुकूल हैं। कहीं पर ऐसे संवादों का प्रयोग नहीं हुआ जो कथानक से पूर्वापार संबंध न रखते हो। कुछ संवाद कथा के पीछे की ओर संकेत करते हैं। कुछ संवादों के द्वारा आगामी कथा के संकेत मिलते हैं। कुछ में वतावरण का प्रभाव है।

12. रोचकता -

संवादों का आकर्षण दर्शक-पाठक के मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित किए रहता है। 'कोणार्क' नाटक के संवादों में पर्याप्त रोचकता है। उदा.

''विशु- बंदी ! हमारे पूज्य महाराज बंदी हों यह अनाचार कैसे हो सकता है, कैसे हो सकता है ?

शैवालिक- तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ? तुम लोग शिल्पी हो कल इनके नौकर थे, आज से राजराज चालुक्य महाराज के शासन की बागड़ोर चाहे जिसके हाथ में हो, तुम्हें तो अपनी कला-साधना करनी है।

धर्मपद- (जो अब तक मूर्तिवत देखता रहा है) बहुत हुआ, बहुत हुआ, दूत। क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाए ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को आज तुम डांवाड़ौल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कंधो पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैंकड़ो घर उजड़ चुके हैं। वह जिसने कोणार्क के सौंदर्य

निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजा वत्सल नरेश श्री नरसिंहदेव।

नरसिंह- शाबास धर्मपद।

सौम्य- धर्मपद तुम्हारे शब्दों में शिल्पी की आत्मा बोलती है।''[22]

'पहला राजा' इस नाटक के संवादों में भी रोचकता यह गुण दिखाई देता है।

''कवष- जल-रूपी दूध को मैं दुहूँगा, प्यासे खेतों का बछड़ा होगा नदी और तालाब पात्र होंगे। (जैसे-जैसे दोहन प्रकारों का वर्णन होता है तैसे-तैसे उर्वी के पीछे एक-एक करके स्त्री या पुरूष घट लेकर वृत्ताकार खड़े हो जाते हैं।)

पृथु- सोना, चांदी, तांबा इत्यादि धातुओं को व्यापारी दुहेंगे, शिल्पियों को बछड़ा होगा, अलंकारों का पात्र।

कवष- विलासी लोग मदिरा-रूपि दूध को दुहेंगे मधुशाला का वत्स होगा, मधुबाला का पात्र।

पृथु- ज्ञानी लोग गुरू बछड़ा बनाकर, वाणी रूप पात्र में वेद रूपी दूध को दुहेंगे।''[23]

इस प्रकार की रोचकता प्रस्तुत नाटक के अनेक संवादों में मिलती है।

'शारदीया' नाटक के संवादों में भी रोचकता विद्यमान है। इसकेकारण कथावस्तु आगे बढ़ती है। उदा. -

''फडके- सैनिकों का साहस अपने नायकों को निकट पाकर ही बढ़ता है, सिंधिया महाराज।

भाऊ- और दुश्मनों ने जो तुम पर चोट की उस से क्या साहस बढ़ा ? तुम्हें उल्टे पाँव लौटना पड़ा। क्या चोट खाकर तुम्हारे लौट आने की बात निजाम तक न पहुँची होगी ?

जिन्से- पहुँची है, भाऊसाहेब

सिंधिया- सरदार जिन्सवाले, क्या तुम्हारा भेदिया वापस आ गया ?

जिन्से- श्रीमन्। उसी ने बताया है कि निजाम को आज सवेरे की घटना की खबर लग चुकी है।.......

फडके - बदला लूँगा, भाऊसाहब। मैं बदला लूँगा।''[24]

13. मार्मिकता -

मार्मिमकता यह गुण नाटक को प्रभाविष्णु बनाता है। 'कोणार्क' नाटक के विशु एवं सौम्य के संवाद में मार्मिकता है -

''विशु- हाँ सौमू। (विभोर-सा) वह बन की कली थी। जंगली शबर जाति की कन्या। चट्टान को फोड़कर बहनेवाली निर्द्वंद्व निष्कलुष जल धारा।

सौम्य- शबर कन्या?

विशु- उसका नाम था सारिका! हमारे नगर में हाट के दिन, अपने गाँववालों के साथ, जंगली छाल जड़ियाँ बेचने आती।

सौम्य- और नगर की ऊँची अटारी का बांसी सूर्य उन वन-कलिका पर मुग्ध हो गया।

विशु- जैसे स्वर और ताल एक-दूसरे पर रीझते हैं। वह मदभरे पावस-सी उन्मत थी, पुष्पावृत्त, कामनी तरू-सी संपन्न

सौम्य- लेकिन वह रागिनी टूटी कैसी?

विशु- वही कायरपन की कथा। सूर्यदेव भी तो कायर थे।

सौम्य- और कुंती भी। तभी तो उसने अपनी संतान को गंगा में बहा दिया।''[25]

'पहला राजा' नाटक के संवादों में मार्मिकता यह गुण दिखाई देता है। पृथु के संवादों से यह ज्ञात होता है -

''पृथु- बंद कीजिए यह शब्दांड़बर .... अभी तो मैंने राजा होकर रत्ती-भर काम नहीं किया। अभी से स्तुति कैसी? (सब लोगों को संबोधित करते हुए) सुनिए मुनिगण, सुनिए माता सुनीथा, सुनिए, बह्मावर्त के निवासियों। आपने मुझे राजा बनाना स्वीकार किया। इसके लिए मुझे स्तुति नहीं, आपका सहयोग चाहिए। व णी का विलास नहीं, कर्म का उल्लास चाहिए। बिना मेहनत के तारीफ मुझे उतनी ही अशोभनीय लगती है जितनी बिना बुराई के निंदा।''[26]

'शारदीया' इस नाटक के संवादों में भी ह्रदय को छूने की क्षमता है। इस नाटक के संवाद बहुत मार्मिक दिखाई देते हैं। नरसिंह और ब यजाबाई का यह संवाद उदाहरण के लिए देखिए -

नरसिंह- रिहाई! (किंचित हास्य) महारानी किस जीवन के लिए रिहाई किस नियामत के लिए रिहाई?

बायजा- तुम भी मुझे महारानी कहोगे नरसिंह।

नरसिंह- बायजाबाई तुम जिसे रिहाई कहती हो वह मेरी कारागार होगी।

बायजा- यह बेदर्द पत्थरों का तहखाना, यह अंधेरे की घुटन।.... तुम्हें इन से दूर होना है।

नरसिंह- बायजाबाई इस तहखाने का आकाश सीमाहीन है, इसकी टिमटिमाती ज्योति में सहस्त्रों सूर्य भासमान हैं क्या तुम भी नहीं समझोगी मेरी इस सीधी, गहरी बात को ?''[27]

इस प्रकार के मार्मिक संवाद नाटक में अनेक जगह पर देखने को मिलते हैं।

14. प्रभाव क्षमता -

'कोणार्क' नाटक के संवादों में प्रभाव क्षमता है। इस नाटक का कोई भी ऐसा संवाद नहीं है जिसमें अपना प्रभाव डालने की शक्ति न हो। नाटक में कई संवाद तो ऐसे हैं जो इतने प्रभावशाली हैं कि दर्शक या पाठक को सूक्ति जैसे प्रतित होते हैं और उनके प्रभाव से वह काफी समय तक मुक्त नहीं हो पाता। उदा. -

''धर्मपद- झुरमुट की ओट में चहकनेवाले पक्षी का स्वर सर्वदा हर्षगान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम उस जय-जयकार की पीछे हाहाकार चुपचाप सिसक रहा था ?''[28]

'पहला राजा' में भी ऐसे कई संवाद मिलते हैं जिनमें प्रभावक्षमता यह गुण विद्‌यमान हैं। सूत और मागध के द्‌वारा राजा पृथु की स्तुति बहुत प्रभावी लगती है।

''सूत- आप दुष्टों के लिए दंड़पाणि होंगे, आप धर्ममर्यादा के विरोधियों का नाश करेंगे। आप अकेले ही प्रजा का पालन पोषण और अनुरंजन कर सकेंगे, और इसलिए हे शत्रुनाशक, हे दृढ़प्रतिज्ञ, हे लोकपालक राजन्, हम आपका अभिनंदन करते हैं।

मागध- जिस प्रकार सूर्यदिवता आठ महिने तपते रहकर जल खींचते हैं और वर्षा ऋतु में उसे उंड़ेल देते हैं, उसी प्रकार आप प्रजा से कर के रूप में धन संचय कर उसे प्रजा के हित में ही व्यय करेंगे। इसलिए हे नीतिपालक राजन् हम आपको नमस्कार करते हैं।''[29]

'शारदीया' नाटक के संवादों में भी प्रभावक्षमता दिखाई देती है। सिंधिया महाराज का यह कथन कितना प्रभावशाली दिखाई देता है -

''सिंधिया- (कुछ देर बाद) खौफनाक आदमी है।.... चमकती शमशीर की तरह भयानक ! ....मगर खून की प्यासी शमशीर में भी आकर्षण होता है। .... मुझे देह की प्यास है, और उसे खून की।.... देह.... और खून.... हा हा हा।''[30]

इस प्रकार के प्रभावशाली संवाद प्रस्तुत नाटक में प्रयुक्त हुए हैं। जिनमें दर्शक या पाठक पर प्रभाव छोड़कर उनको प्रभावित करने की क्षमता है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के बाद हम कह सकते हैं कि 'कोणार्क' नाटक के संवादों में स्वाभाविकता संक्षिप्तता, सरलता, रोचकता, प्रसंगानुकूलता, उपयुक्तता, प्रभाव क्षमता, मार्मिकता, संबद्धता, मनोरंजनपूर्णता, मनोवैज्ञानिकता, गतिशीलता और चरित्र प्रकाशन की क्षमता है। वे पात्रों का चरित्र-चित्रण करने एवं नाटक की ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखने में सक्षम है। संवादों के इन्हीं गुणों के कारण नाटक के कथानक में नाटकीयता में अभिवृद्धि हुई है।

'कोणार्क' नाटक की तरह 'पहला राजा' इस नाटक के संवादों में कथोपकथन के सभी गुण विद्यमान हैं। ये संवाद नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में सफल हुए हैं। इन संवादों में मनुष्य के ह्रदय को छू लेने की क्षमता है। तो कई संवाद पात्रों का अंतर्द्वंद्व तथा उनकी मानसिकता स्पष्ट करने में सफल हुए हैं। ये संवाद रोचक भी हैं और ये प्रसंगानुकूल होने के कारण उनमें कथावस्तु का विकास करने की शक्ति है। उनमें कई संवाद भविष्य में घटनेवाली अलक्ष्य घटनाओं के संकेत देने की अपूर्व क्षमता रखनेवाले हैं।

'कोणार्क' और 'पहला राजा' इस नाटकों के संवादों की तरह 'शारदीया' नाटक के संवादों में भी कथोपकथन के सभी गुण दिखाई देते हैं। इन संवादों से रचना में कथाशिल्प एवं नाटकीयता का मनिकांचन योग हो सका है। नाटक के संवाद पात्रों के व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हैं। इन संवादों से नाटक की कथा को गति और शक्ति प्राप्त हुई है। ये संवाद प्राय: विषयानुकूल, समयानुकूल, संक्षिप्त एवं सरस हैं। उनमें एक ऐसी यथार्थता है जो उन्हें प्राणवान बनाने में सहायक हुई है।

'शारदीया' नाटक के संवादों से देशकाल एवं वातावरण को भी चित्रित किया गया है। इसके साथ पात्रों की अंतर्बाह्य परिस्थितियों का चित्रण भी नाटक के संवादों के माध्यम से यहाँ हुआ है। ये संवाद नाटकीयता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं और जो समस्या नाटक में उठाई गई है उसकी भी संवादों के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। स्वादों से नाटक की ऐतिहासिकता भी यहाँ स्पष्ट होती है। प्रस्तुत नाटक के कुछ कथापेकथन लंबे हो गए हैं किंतु इन से कथा की गति अथवा नाटकीयता में शैथिल्य नहीं आया है।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि आलोच्य नाटकों के संवाद कथोपकथन के गुणों की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

आलोच्य नाटकों में देशकाल और वातावरण -

देशकाल और वातावरण का महत्त्व साहित्य की सभी विधाओं में है। किंतु नाटक विधा में उसका सर्वाधिक महत्त्व होता है। नाटक में वास्तविकता, सजीवता और गरिमा लाने के लिए अनुकूल वातावरण का होना नितांत आवश्यक है। देशकाल परिस्थितियों, परंपराओं और जीवन पद्धतियों की दिग्दर्शिका वेशभूषा आदि का जितना स्वाभाविक चित्रण नाटक में होगा, उतनी ही सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता उसमें आ सकेगी। भौगोलिक परिवेश की भी वातावरण के लिए पर्याप्त उपयोगिता है। ऐतिहासिक नाटकों में तो देशकाल एवं वातावरण का चित्रण अपरिहार्य है। उसमें तत्कालीन, सामाजिक, राजनीतिक परिवेश, भाषा, आचार-व्यवहार एवं रहन-सहन का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत करना नाटककार के लिए अनिवार्य होता है। क्योंकि इसके बिना किसी भी ऐतिहासिक नाटक की कथा स्वाभाविक एवं सहज संप्रेषणीय नहीं बन सकती।

वातावरण के विषय में यह अत्यंत स्मरणीय है कि यह कथानक एवं चरित्र के प्रकाशन तथा स्पष्टीकरण का साधन मात्र है। अतः साधन कहीं साध्य न बन जाए, या साध्य के व्यक्तित्व आद्यंत आच्छादित करके हीन एवं उपेक्ष्य न बना दे, इस मूल पकड़ का ध्यान निर्माता को आरंभ से ही होना चाहिए। वातावरण में देशकाल ग्राह्य हैं और साथ ही आंतरिक मनोदशा का भी चित्रण उसमें हो। इन दोनों के द्वारा ही सच्चा एवं पूर्ण वातावरण तैयार होता है। प्राकृतिक चित्रणों और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य नाटक को पर्याप्त मात्रा में स्पंदनयुक्त, सरस एवं प्रभावी बनता है।

ऐतिहासिक नाटककार को कथानुकूल दृश्य-संयोजन एवं रंग संकेत देने चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के नाटकों में देशकाल और वातावरण मूल कथानक को अत्यधिक प्रभावित करता है। हिंदी में प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में देशकाल और वातावरण को मूर्तमान कर देने की लगन, ललक सर्वाधिक सशक्त रूप में दिखाई देती है।

आलोच्य नाटक 'कोणार्क', 'पहला राजा' और 'शारदीया' इनमें 'कोणार्क' ऐतिहासिक नाटक है, 'पहला राजा' पौराणिक और ऐतिहासिक तथा 'शारदीया' भी ऐतिहासिक नाटक है। नाटककार ने तत्कालीन देशकाल एवं वातावरण को प्रस्तुत करने में पर्याप्त सजगता प्रदर्शित की है। इन नाटकों में

ऐतिहासिक वातावरण को भव्य, वास्तविक, स्वभाविक, सुंदर और कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास नाटककार जगदीशचंद्र माथुर ने किया है।

आलोच्य नाटकों में चित्रित देशकाल एवं वातावरण का मूल्यांकन हम निम्नलिखित दृष्टियों से कर सकते हैं -

1. आतंरिक वातावरण
2. बाह्य वातावरण।

आंतरिक वातावरण में घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण आता है। तथा पात्रों की मानसिक स्थिति, उनके हावभाव तथा अंतर्द्वंद्व का चित्रण आता है। बाह्य वातावरण में तत्कालीन सभी परिस्थितियाँ आ जाती हैं। अब हम इन दोनों प्रकार की वातावरण की दृष्टि से आलोच्य नाटकों पर दृष्टिपात करेंगे और यह देखेंगे कि इनका चित्रण कितना और किस रूप में आलोच्य नाटकों में संभव हो सका है।

1. आंतरिक वातावरण।

क. घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण।

ख. पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण।

ग. पात्रों के हाव-भाव और अंतर्द्वंद्व का चित्रण।

क. घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण -

घटनाओं और परिस्थितियों के चित्रण द्वारा नाटककार नाटक की पृष्ठभूमि का वातावरण तैयार करता है। इसके साथ ही परिस्थितियाँ स्वाभाविक बनती है। घटना-विशेष अथवा परिस्थिति-विशेष से आंतरिक वातावरण मूर्त रूप में सामने आता है।

'कोणार्क' एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित नाट्य-रचना है। और इसमें नाटककार ने विख्यात सूर्य मंदिर के ध्वंस होने की घटना को प्रस्तुत किया है। इसलिए लेखक जगदीशचंद्र माथुर ने सूर्य मंदिर के प्रधान शिल्पी के घर की स्थिति, मंदिर निर्माण में उसकी लगनशीलता महामात्य चालुक्य के धमकी से व्युत्पन्न शिल्पियों का भय, आतंक धर्मपद की विद्रोहधर्मिता, चालुक्य के सैनिकों एवं शिल्पियों के प्राणांतक संघर्ष और अंततः विक्षुब्ध विशु द्वारा मंदिर को ध्वंस करना आदि का चित्रण इसी आंतरिक पृष्ठभूमि में किया है। चालुक्य द्वारा शिल्पियों को दी गई धमकी का जो प्रभाव शिल्पियों पर

पड़ा उसकी अभिव्यंजना इस प्रकार के वातावरण में हुई है और यह पात्रों की परिस्थितियों का व्यापक रेखांकन करने में समर्थ हैं -

''राजीव- (नीरव तोड़ते हुए भीत स्वर में) अब क्या होगा ? (विशु अचेतन सा चौकी पर बैठ जाता है)

सौम्य- राजनगरी में अपराधियों के हाथ कटते मैंने देखे हैं। बड़ी पीड़ा होती है।

विशु- (मानो सपने में) उत्कल नरेश की आज्ञा ? महाराज मेरी बरसों की सेवाओं पर इतना भीषण कुठाराघात करेंगे।

सौम्य - क्या मालूम उत्कल - नरेश की आज्ञा है, या महामात्य का अपना उत्पात ! हमारे पास साधन भी नहीं, समय भी तो नहीं कि महाराज के मन की बात जान सकें। वे अभी तक वंगविजिय के उपरांत लौटे भी नहीं हैं।

राजीव- सात दिन ! केवल सात द्विवस के बाद हम सब के हाथ काट लिए जाएँगे ?

सौम्य- ये हाथ.... (काँप कर हाथों को देखता हुआ) ये हाथ ? (सूखी हँसी)[31]

'पहला राजा' यह नाटक भी एक ऐतिहासिक और पौराणिक धरातल पर आधारित नाटक है, लेकिन स्वयं नाटककार का कहना है कि - 'यह नाटक न पौराणिक है, न ऐतिहासिक, न यथार्थवादी। यह तो एक 'मॉडर्न ऐलिगोरी' - आधुनिक अन्योक्ति का मंचीय रूप है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने आर्यों का पहला राजा पृथु के निर्माण की घटना को चित्रित किया है। इसमें नाटककार ने ऋषियों द्वारा वेन के शव का मंथन करके पृथु और कवष की निर्मिति, पृथु को राजा के रूप में कर्तव्यपालन, राज्य में अकाल की स्थिति निर्माण होना, कवष और उर्वी द्वारा बाँध तैयार करने का प्रयत्न, ऋषि मुनियों की कूटनीति, पृथु का सपना, दोह्न प्रकारों का वर्णन और अंत में बाँध बाँधनेवाला कवष और उर्वी का नदी की जलधार के साथ बहना आदि का चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया है।

राजा पृथु जब निहत्या भीड़ में घुस जाता है और यह खबर दासी द्वारा अर्चना को मिलती है तो उसका प्रभाव अर्चना के मन पर पड़ता है। उस पात्र की परिस्थिति बदल जाती है।

''दासी - गजब हो गया।

अर्चना- क्या हुआ ?

दासी- देवी, राजा घिर गए हैं ?

अर्चना- घिर गए हैं ?

SHIVAJI UNIVERSITY. KOLHAPUR

दासी- उन्होंने आजगव धनुष अलग उठाकर रख दिया खड्ग को छुआ तक नहीं।..... भीड़ में घुस गए और उस तरफ बढ़ने लगे जहाँ सूत और मागध पर भीड़ बेतहाशा प्रहार कर रही थी।

अर्चना- (उद्वेग से) प्रहार ? .... मैं जा रही हूँ।

गर्ग- अर्चना तनिक ठहरो।

अर्चना- नहीं पिताजी ! आर्यपुत्र के प्राणों पर खतरा है (जाते हुए) मुझे जाना है।''[32]

कोणार्क नाटक की तरह 'शारदीया' नाटक भी ऐतिहासिक घटना पर आधारित नाट्य-कृति है। प्रस्तुत नाटक में एक विख्यात कलाकार के प्रेम एवं जीवन की घटना प्रस्तुत की है। यह घटना प्रस्तुत करते वक्त नाटककार ने अपनी कल्पना के सहारे (कलाकार) कारीगर नरसिंह की स्थिति, उसकी प्यार को पाने की छटपटाहट तथा संघर्ष, शर्जेराव घाटगे की महत्त्वाकांक्षा उसके लिए अपनी पुत्री को बली चढ़ाना, सिंधिया महाराज को बूरी आदतें लगवाना तथा कूटनीति के द्वारा राजद्रोह के अपराध में नरसिंहराव को बंदी बनाना, सिंधिया की ओर से मनचाहे आज्ञापत्र लिखकर लेना आदि बातों का चित्रण किया गया है। साथ ही नाटककार ने नाटक की ऐतिहासिकता कायम रखने के लिए खर्दा युद्ध की घटना को बहुत अच्छी तरह से चित्रित किया है।

ख. पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण -

आंतरिक वातावरण की दृष्टि से इस प्रकार का चित्रण माथुर ने अत्यंत सशक्त ढंग से किया है। इस चित्रण के द्वारा पात्रों की संपूर्ण मानसिक स्थिति और तज्जनित वातावरण को मूर्त कर दिया है। विशु एवं धर्मपद, यही दो ऐसे पात्र हैं, जिनकी मानसिक अवस्था का चित्रण बड़े सशक्त ढंग से नाटककार ने किया है।

निम्नलिखित संवाद विशु की मानसिक स्थिति का चित्रण करता है -

विशु- (सावेश तेज स्वर) सौमू मेरे प्रश्न का उत्तर दो। ..... वह कैसा है ?

सौम्य- (साश्चर्य) विशु ! क्या हुआ तुम्हें ? .....(निकट जाकर) और ..... और मेरी प्रतिमा के निकट इस तरह मुठ्ठी बाँधे तुम क्यों खड़े हो ?

विशु- (घुमकर मुठ्ठी खोलता है) देखा !

सौम्य- हाथी-दांत का कंकण।.... (करीब आकर गौर से देखता हुआ) अरे ठीक वही आकृति, ठीक वही छवी -

विशु- जो मैंने तुम्हारी मूर्ति के कंठहार में अंकित की है !

सौम्य- कहाँ मिली तुम्हें ?

विशु- धर्मपद के गले से गिरी थी, जब वह मूर्छित हुआ।

सौम्य- (अविश्वास के स्वर में) धर्मपद के गले से ? .... धर्मपद ? ..... यानी धर्मपद।''[33]

'पहला राजा' नाटक नें भी कुछ ऐसे संवाद हैं जिन के द्वारा पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण होता है। निम्नलिखित संवाद द्वारा अर्चना की मानसिक स्थिति हमें दिखाई देती है।

''अर्चना- कहाँ गए हैं आर्यपुत्र ?

अत्रि - सरस्वती पार रेगिस्तान में अनार्य खंड़हरों की ओर।

गर्ग- तुम्हारे योग्य वह यात्रा नहीं है बेटी।

अर्चना- पिताजी स्त्री की सुकुमारता अलंकार है, बंधन नहीं। आर्यपुत्र की किस समर यात्रा में मैं उनके साथ नहीं गई ?

अत्रि- यह समर नहीं है रानी ! इस अभियान में राजा को अकेले जाना है, बिल्कुल अकेले।

अर्चना - तब तो मैं निश्चय ही जाऊँगी। मेरे बिना उनके रीते मन में आशंकाओं और दुःस्वप्नों का जमघट होगा। मैं जा रही हूँ। (जाती है)।''[34]

'शारदीया' इस नाटक में भी ऐसे संवाद हैं, जो पात्रों की मानसिक स्थिति बताकर वातावरण निर्माण करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। बायजाबाई और शर्जेराव के संवादों द्वारा हमें बायजाबाई की मानसिक स्थिति का पता चलता है -

''बायजा- नहीं बाबा..... अपने गलत सुना होगा। .... कह दीजिए बाबा कि ..... आप हँसी कर रहे थे। ....कह दीजिए कि यह सब झूठ है। ....बाबा ....बाबा .....ओह ......(रूदन)।

शर्जेराव- मैं जानता था कि यह सब सुनकर बहुत चोट पहुँचेगी तुझे। बहुत कड़ा दिल करके ..... यह बात तुझसे कह सका हूँ।

बायजा- सरनाबाई .... सरनाबाई।

शर्जेराव- सरनाबाई तो अपने गाँव गई, बेटी। ....अभी-अभी।

बायजा - ओह ! सरनाबाई, तू भी विश्वासघातिनी निकली। .....तुम भी नरसिंहराव ! .....हर तरफ विश्वासघात। हर तरफ दगा। .....और बाबा।''[35]

यहाँ बायजाबाई का नरसिंह के प्रति जो प्रेम है वह उमड़ रहा है। अपने प्रेमी की मृत्यु की बात सुनकर उसके दिल पर गहरा आघात होता है। मृत्यु की खबर पर उसका विश्वास नहीं बैठता, अपने पिता को ही वह कहती है कि आपने ही गलत सुना होगा। इस संवाद से बायजाबाई की मानसिक स्थिति दिखाई गई है।

ग. पात्रों के हाव-भाव और अंतर्द्वंद्व का चित्रण -

जगदीशचंद्र माथुर ने पात्रों के मुख से केवल संवाद ही नहीं कहलवाए हैं अपितु उनके कथन का दूसरे पात्र पर क्या प्रभाव होता है और कथन से पूर्व स्वयं दूसरे के कथन का उस पर क्या प्रभाव होता है, क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका सुंदर निदर्शन किया है। इससे पात्रों की गूढ़तम् आंतरिक स्थिति का सम्यक परिचय मिल जाता है। पात्रों के हाव-भाव और उनके अंतर्द्वंद्व का चित्रण विशेष रूप से संवादों के माध्यम से ही हुआ है। उदा. -

''धर्मपद - (खड़िया से एक पत्थर पर जल्दी-जल्दी आकृति खींचता हुआ) मेरे मन में जो चित्र है उसे यों पूरी तरह तो नहीं समझा जा सकता, किंतु देखिए अम्ल का आकार यदि कुछ इस तरह का हो तो (राजीव और विशु धर्मपद के निकट आकर रेखाचित्र का अवलोकन करते हैं।)

विशु - (ध्यान मग्न मुद्रा में कुछ दूर हटते हुए) हूँ। ....इस बात में कुछ तथ्य है। ....शायद .....शायद आम्ल के बाहरी भाग पर इस समय अनुपात से अधिक भार है। ... अगर .... अगर .... हम उस भार को हल्का कर सकें। तुम ठीक तो कहते हो युवक (खड़े होते हुए), तुम ठीक कहते हो। .....भार को हल्का करने के लिए अगर पटल को अंतर्मुखी कर दिया जाए तो संभव है, संभव है .... कलाकार की भावना चरमबिंदु पर पहुँच गई है।) धर्मपद, चलो मेरे साथ। अभी चलो। हम छप्र के उपर चढ़कर अभी तैयारी करेंगे पटल बदलने की। अभी ! (मध्यद्वार की ओर बढ़ता है)।''[36]

'पहला राजा' नाटक के पात्रों के संवादों द्वारा उनके हाव-भाव और अंतर्द्वंद्व के चित्रण द्वारा वातावरण निर्माण हुआ है।

पृथु और कवष का संवाद देखिए -

''कवष- (हँसता है) खूब ! ....जैसे तुम्हें उर्वी से भी कोई लगाव नहीं रहा।

पृथु - (पीठ फेरकर थोड़ा दूर हटता हुआ) यह मैं कब कहता हूँ कि उर्वी यहाँ से चली जाए ? ....मुझे अपने नए उत्तरदायित्व में उसकी भी जरूरत है।

कवष- (कटु स्वर) तुम्हारा मतलब है अंकशायिनी, लेकिन सहधर्मिनी नहीं ? यही तुम्हारी चाल है, राजा पृथु ! (प्रस्थान)

पृथु - (हठात उत्तेजित) और तुम .... जंघापुत्र ? (कवष की ओर मुड़कर) तुम ? कवष ! ... कवष !! (उच्च स्वर में) मैं समझ रहा हूँ तुम लोगों की चाल ! (जोर से) जाओ, जाओ लेकिन सावधान ! मेरे पौरूष का जंगल सुलग चुका है और इसकी धधगती हुई आग तुम्हें भी ग्रस लेगी। .....ठीक ही हुआ। सारे संशय भस्म हो रहे हैं ..... सारी दुविधाएँ ....और मेरा रास्ता साफ है। ..... (धनुष्य का संधान करते हुए) अकेला हूँ तो क्या मेरे हाथ सधे हुए हैं। .... अकेला ! (धनुष्य की टंकार ! .... तुरंत बाद पायल की झंकार ! अर्चना का प्रवेश) अकेला !''[37]

शारदीया उदा. -

''बायजा- (कुछ रूककर रूद्‌ध स्वर में) नरसिंह ! अपनी कटार देना ..... (कटार लेती है)

नरसिंह- .....यह क्या कर रही हो ? (बायजाबाई बांयी उंगली में कटार से घाव करती है, रक्त निकल पड़ता है।)

बायजा- रक्त का टीका। ....मस्तक आगे करो, नरसिंह। (टीका लगाते हुए) विजयलक्ष्मी तुम्हारी सहायता करे .... और मेरी भी।

नरसिंह- (अविष्ट) तुम्हारी उंगली के इस नन्हें घाव को कभी न भूलूंगा बायजाबाई। (जाते हुए) अपने पिताजी से कह देना, नरसिंह ने माँ का वायदा पूरा कर दिया। अब उनके उपर है।

बायजा- नरसिंह।

नरसिंह- शारदीया ! (प्रस्थान, बाहर से) शारदीया ! (घोड़े पर चढ़ने और जाने की आवाज। बायजाबाई ठगी-सी खड़ी रह जाती है)।''[38]

उपर्युक्त पात्रों के संवादों से पात्रों के हावभाव और उनके अंतर्द्‌वंद्‌व का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। पात्रों की गूढ़तम्‌ आंतरिक स्थिति मालूम हो जाती है। पात्रों के संवादों से दूसरे पात्रों पर

प्रभाव पड़ता है। 'कोणार्क', 'पहला राजा' तथा 'शारदीया' नाटक के बहुत से संवाद पात्रों की आंतरिक स्थिति का चित्रण करनेवाले दिखाई देते हैं।

2. बाह्य वातावरण

1. सामाजिक परिस्थितियाँ।
2. धार्मिक परिस्थितियाँ।
3. राजनीतिक परिस्थितियाँ।
4. कला और संस्कृति।

1. सामाजिक परिस्थितियाँ -

i. कोणार्क -

'कोणार्क' नाटक में तत्कालीन समाज की स्पष्ट रूप से कोई तस्वीर नहीं खींची गई है और न ही नाटकीय कथा के परिप्रेक्ष्य में यह संभव था। तथापि विशु धर्मपद आदि के संवादों से तत्कालीन सामाजिक दशा का थोड़ा, बहुत परिचय मिल ही जाता है। विशु शबर कन्या सारिका से अनैतिक संबंध स्थापित करने एवं उसे गर्भवती बनाने के बाद केवल इस भय से भाग आता है कि इससे परिवार एवं समाज में उसकी प्रतिष्ठ मिट्टी में मिल जाएगी। इस सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए ही वह अपना मूल नाम श्रीधर को बदलकर विशु रखता है।

धर्मपद के संवादों से तत्कालीन ग्रामीण एवं मजदूर वर्ग निर्धनता, विपन्नता तथा पेट भरने के लिए शहरों को आने की विवशता का पर्याप्त चित्रण भी मिल जाता है। साथ यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिल्पी भी छैनी हथौड़ी और कुदाली का प्रयोग करते थे। और अस्त्र शस्त्रों के रूप में धनुर्बाण तथा खड़ग का व्यवहार प्रचलित था।

ii. पहला राजा -

'पहला राजा' इस नाटक में सामाजिक परिस्थिति कुछ इस प्रकार थी - ब्रह्मावर्त में डाकुओं का राज था इससे बचने के लिए मुनियों ने राजा पृथु को निर्माण किया। उस वक्त के समाज में वर्ण संकरता का बोलबाला था। क्योंकि पृथु को शपथ देते वक्त समाज को वर्ण संकरता से बचाना इस प्रकार की भी शपथ दी थी।

राजा पृथु के काल में राज्य में दुर्भिक्ष था। धरती अन्नहीन हो गई। भूख के कारण प्रजाजन सूखकर कांटा होने लगे। इसी समय पृथु राजा होने के नाते इस समस्या को (भूख) मिटाता है। ऋषि मुनियों के संवादों से हमें यह पता चलता है कि तत्कालीन समाज पर ऋषि मुनियों की पकड़ थी। उनके मन में दस्युओं तथा अनार्यों के प्रति अत्यंत क्रोध है। ये मुनिगण स्वार्थी हैं। जिस नहर तथा बाँध का उन्हें कुछ लाभ नहीं उस बाँध को वह पूरा नहीं होने देते। काम पर वे आदमी नहीं भेजते। समाज के लिए पृथु राजा था लेकिन मुनियों ने पृथु को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखा था।

प्रस्तुत नाटक में भी बाँध बाँधने के लिए उस वक्त लोग कुदाली का उपयोग करते थे। तथा शस्त्र अस्त्रों के रूप में धनुर्बाण का। क्योंकि मुनि राजा पृथु को 'आजगव' नाम का धनुर्बाण देते हैं।

iii. शारदीया -

प्रस्तुत नाटक में तत्कालीन समाज की स्पष्ट रूप से कोई तस्वीर उभरी नहीं है। तथा नाटकीय कथा के द्‌वारा भी इसका कोई आभास नहीं मिलता क्योंकि पूरा नाटक ऐतिहासिक होने के कारण उसमें सामाजिकता दिखाई नहीं देती। फिर भी कुछ प्रसंगों के द्‌वारा तथा नरसिंहराव के संवादों द्‌वारा तत्कालीन, सामाजिक स्थिति का अंदाजा हम लगा सकते हैं।

तत्कालीन समाज व्यवस्था में गोद लेने की प्रथा थी क्योंकि महादजी सिंधिया ने दौलतराव सिंधिया को गोद लिया था। तत्कालीन समाज में अच्छे कारीगर थे। समाज में ऐसे कलाकारों को इज्जत दी जाती थी। पंचतोलिया साड़ी के द्‌वारा कारीगरों की कला हमें मालूम हो जाती है। तत्कालीन समाज में शरदोत्सव मनाए जाते थे।

उसी समय राज दरबारों में नाच-तमाशे का प्रदर्शन किया जाता था और उसीके द्‌वारा राजा और उसकी सेना का मनोरंजन किया जाता था। इसी बात का पता हमें निजाम के दरबार में किए जानेवाली नाच-तमाशे तथा नकलों के द्‌वारा मालूम हो जाता है। तथा रहीम नर्तकी के द्‌वारा।

नरसिंहराव के संवादों से मालूम होता है कि निजाम राज्य में गोवध बंद रहा और महाराष्ट्र एवं निजाम के मराठवाड़ा क्षेत्र में हिंदू मुसलमानों के आपसी संबंध प्रायः मेलभाव से पूर्ण हैं। स्वयं नाटककार ने 'नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' मे यह स्पष्ट किया है।

तत्कालीन समाज के लोग शराब और अफीम की नशा करते थे। क्योंकि नाटक में दिखाया गया है कि स्वयं दौलतराव सिंधिया को ही शराब तथा अफीम की बुरी आदते थी

2. ***धार्मिक परिस्थितियाँ -***

i. कोणार्क -

धार्मिक परिस्थितियों के विषय में कोणार्क में कुछ अधिक सूचना नहीं दी गई है। केवल इतनाही बतलाया गया है कि तत्कालीन उत्कल प्रदेश में मंदिरों का निर्माण बहुतायत से हुआ था। विशु द्वारा ही जगन्नाथपुरी में अनेक मंदिरों के निर्माण की सूचना नाटक में दी गई है। इस विषय में परिचय के अंतर्गत लेखक ने लिखा है - ''ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर तेरहवी शताब्दी तक उड़ीसा में एक के बाद एक विशाल, भव्य और कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ जो आज भी भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी और कोणार्क में तत्कालीन कला के साक्षी रूप में खड़े हैं। इनमें से सर्वश्रेष्ठ मंदिर, सूर्य देवता का देवालय, कोणार्क में स्थित है।''[39] इसी कोणार्क के सूर्यमंदिर की कथा नाटक में दी गई है।

ii. पहला राजा -

'पहला राजा' इस नाटक का संपूर्ण काल पौराणिक है। शुक्राचार्य और सूत तथा मागध के संवादों से हमें तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का पता चलता है। तत्कालीन लोग धर्म तथा ईश्वर को माननेवाले थे। स्वयं राजा पृथु ही सूत और मागध को देवताओं की स्तुति करने के लिए कहता है। तत्कालीन समाज के लोग जब घर में कोई बीमार पड़ता था तब देवताओं का स्तवन तथा आराधना करते थे। मागध कहता है - ''अश्विनीकुमारों की स्तुति हमने की जब ज्वर और पीड़ा ने हमारे कुटुंबों को सताया।''[40] इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज के लोगों का देवी तथा देवता पर विश्वास था। वे अपने राजा के जय होने के लिए विभिन्न प्रकार के देवी देवताओं की स्तुति तथा आराधना करते थे। इससे स्पष्ट है तत्कालीन समाज में अंधविश्वास तथा बाह्याडंबर का बोलबाला था।

राजा पृथु के राज्य में जब अकाल पड़ता है तब इस अकाल को उर्वी देवी का प्रकोप समझती है। और अकाल की समस्या हल करने के लिए भूचंडी की मूर्ति कलश पर रखकर उसकी आराधना की जाती है। तीन स्त्रियाँ अपने बाल बिखेरकर उस मूर्ति के आगे घूमने लगती, जैसे कोई ओझा किसी स्त्री पर देवी चढ़ाता है। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाजव्यवस्था में ओझा, झाड़, फूँक धर्म के नाम पर ऐसे बाह्याड़ंबर एवं कर्मकांड किए जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत नाटक 'पहला राजा' इसमें धर्म तथा कर्मकांड को माननेवाले लोग हैं।

iii. शारदीया -

'शारदीया' नाटक में धार्मिक परिस्थितियों के बारे में कुछ अधिक जानकारी नहीं मिलती। नरसिंहराव के संवादों द्वारा तथा नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि द्वारा तत्कालीन समाज का धार्मिक वातावरण हमारे सामने आता है। पृष्ठभूमि में स्वयं लेखक ने लिखा है कि खर्दा युद्ध में कुछ शर्ते मंजूर हुई - ''निजाम राज्य में गोवध नहीं होना चाहिए। साथ ही महाराष्ट्र में मुसलमानों के मजहब, ताजियों, खुदापरस्ती इत्यादि पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। हिंदू और मुसलमान एक ही परमात्मा की संतान हैं। इसलिए न तो मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के मंदिरों और पूजास्थलों पर आघात होना चाहिए और न हिंदू को मूसलमानों की मस्जिदों, पीर-पैगंबरों के प्रति अनादर दर्शाना चाहिए। तदनुसार मुसलमानों को भी हिंदुओं के पूजापाठ में विघ्न नहीं डालना चाहिए। दोनों मतावलंबी अपनी-अपनी धर्मचर्या का पालन, बिना एक-दूसरे को छेड़े, करतें रहें।''[41]

उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट होता है कि खर्दा युद्ध से पहले तत्कालीन धार्मिक स्थिति अच्छी नहीं थी। हिंदू और मुसलमान अपने धर्म का सहारा लेकर लड़ते थे। एक-दूसरे के मन में अपने-अपने धर्म के प्रति उन्माद और दूसरे के धर्म के प्रति नफरत थी। लेकिन युद्ध के बाद धर्म का उन्माद नष्ट हो गया। हिंदू-मुस्लिम में एकता तथा भाईचारा निर्माण हो गया। अपनी-अपनी धर्मचर्या, पूजापाठ हिंदू और मुसलमान करने लगे। मुसलमानों द्वारा किया जानेवाला गोवध बंद हो गया।

3. राजनीतिक परिस्थितियाँ -

i. कोणार्क -

'कोणार्क' नाटक में राजनीतिक परिस्थितियों का भी चित्रण हुआ है। नाटक में यह स्पष्ट कहा गया है कि महाराज नरसिंहदेव परम प्रतापी नरेश थे और वे यवनों को पराजित करने बंगप्रदेश में गए थे। उनके जाते ही दंड़पाशिक के अधिकार अपने हाथ में लेकर महामात्य राजराज चालुक्य ने जनता, मजदूर एवं शिल्पियों पर क्रूर अत्याचार प्रारंभ किए। यहाँ तक की निहत्ये एवं सैन्यविहीन नरसिंह देव के विरूद्ध उसने विद्रोह कर दिया और उनके पास अधीनता अथवा आत्मसमर्पण का संदेशा भेजा। विद्रोही धर्मपद के परामर्श से कलिंग नरेश ने आत्मसमर्पण नहीं किया और तब चालुक्य द्वारा शिल्पियों का क्रूर संहार हुआ। नरसिंह देव तो उससे किसी प्रकार बच निकले किंतु शिल्पियों का विनाश

होते देख विशु ने ही अपने द्वारा निर्मित सूर्यमंदिर का ध्वंस कर दिया, जिससे अत्याचारी चालुक्य और उसके सब साथी मंदिर के मलबे में दबकर मर गए।

ii. पहला राजा -

'पहला राजा' नाटक में राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। क्योंकि नाटक का नामकरण ही 'पहला राजा' है। और जहाँ राजा होता है वहाँ राजनीतिक परिस्थिति निर्माण होती है।

ऋषि-मुनियों ने राजा वेन को मृत्यु का अभिशाप दिया है। लेकिन वेन के मरते ही दस्यु आश्रमों पर हमला करते हैं। शासक के बिना राजव्यवस्था ठीक नहीं रहती। इसलिए नए शासक की खोज में वे पृथु को पहला राजा घोषित करते हैं। राजा का मंत्रिमंड़ल तैयार किया जाता है, उसमें सारे ऋषि होते हैं।

नाटक में ऋषि हर समय कूटनीति अपनाते हैं। वे अकाल का कारण उर्वी और कवष का भूचंड़ी अनुष्ठान ही बताते हैं और राजा को उर्वी तथा कवष पर आक्रमण करने के लिए कहते हैं। अकाल की समस्या हल करने के लिए जो बाँध हो रहा था उसे ऋषि पूरा नहीं होने देते क्योंकि उनके मन में भय है कि बाँध बंध गया तो राजा तथा प्रजा पर उर्वी और कवष की धाक जमेगी। समाज में ऋषि मुनियों का महत्त्व कम हो जाएगा।

राजा पृथु को शुक्राचार्य की शुक्रनीति तथा अन्य मुनियों की कुटनीति समझ में आती है। राजा अपने हाथ में कुदाल लेकर बाँध को पूरा करने को जानेवाला ही था। तब उसे समाचार मिलता है बाँध टूट गया और उसमें उर्वी और कवष बह गए। इस घटना से ऋषि कुल प्रसन्न होता है। लेकिन पृथु उसे अपनी हार मानता है।

iii. शारदीया -

'शारदीया' नाटक में भी राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। शारदीया की राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में गोविंद चातक लिखते हैं - ''राजनीति की स्थूल घटनाओं के बीच बायजाबाई और नरसिंहराव के व्यक्तित्व प्रणय के अंत: संबंधों और उसमें निहित जीवन की कविता से जुड़े हैं।''[42]

'शारदीया' नाटक में शर्जेराव की राजनीति तथा कूटनीति के बायजाबाई और नरसिंहराव शिकार होते हैं। नाटक में खर्दा युद्ध का प्रसंग दिखाया है। उसमें नरसिंह अपना साहस और कौशल दिखानेवाला ही था लेकिन शर्जेराव वहाँ भी अपनी कूटनीति तथा राजनीति में सफल होता है। वह नरसिंह के बारे में दौलतराव सिंधिया के मन में विष घोल देता है। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए बीच में आनेवाले नरसिंह को काँटे की तरह उखाड़कर फेंक देता है।

शर्जेराव सिंधिया महाराज को शराब तथा अफीम की बुरी आदतें लगवाता है और अपना मनोवांछित काम पूरा करता है। युद्ध में मराठों की विजय होती है कुछ शर्तें हिंदू-मुस्लिम के बीच में होती हैं। नरसिंहराव को ग्वालियर का सरदार जिन्सेवाले प्राणदंड से बचाता है। आजीवन कारागार का दंड उसे दिया जाता है। ग्वालियर किले के तहखाने में ही अंत में रानी बनी हुई बायजाबाई और नरसिंह की भेंट होती है।

4. कला और सांस्कृतिक परिस्थिति -

i. कोणार्क -

'कोणार्क' नाटक में तेरहवीं शताब्दी के उत्कल नरेश नरसिंहदेव के युग की कला और संस्कृति की पर्याप्त जानकारी मिल जाती है। 'कोणार्क' के सूर्यमंदिर को शिल्पी विशु की निखरी हुई कला का अभूतपूर्व चमत्कार नाटक नें बताया गया है।सूत्रधार कहता है - "बारह सौ शिल्पियों और मजदूरों की बारह बरस की लंबी साधना और कठोर मेहनत के बाद विशु की विराट कल्पना साकार हो चली है। हाँ ... विराट कल्पना पाषाण का एक विशाल रथ सैकड़ों गज लंबी चौड़ी है, जिसकी है पिष्ठ, दुर्ग प्राचीर से बृहद है जिसके बारह चक्र और गिरि से विपुल हैं जिसके सात घोड़े और मंदिर के भीतर है एक अनोखा चमत्कार सूर्यभगवान की जाज्जवल्यमान मूर्ति, चुंबक पत्थर के आकर्षण से निराधार, शून्य में लटकी हुई है।"[43]

स्वयं विशु अपनी कला पर मुग्ध होकर कहता है - "हमने पत्थर में जान डाल दी है, उसे गति दे दी है। (सोत्साह) वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मंदिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगंध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। .....लेकिन ..... लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है, ईर्ष्या से। मुझे लगता है जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।"[44]

'कोणार्क' मंदिर और उसकी अप्रतिम कला का परिचय नाटक के कई प्रसंगों में मिलता है। इन सबसे यह प्रतीत होता है कि भवन एवं मूर्तिकला में उस काल की उन्नति अपने चरम पर थी। उत्कल राज्य के शिल्पी अत्यंत कुशल थे। और प्रस्तर खंड़ों पर स्वाभाविक एवं सजीव मूर्तियों का निर्माण करने में वे सिद्धहस्त थे।

ii. पहला राजा -

'पहला राजा' इस नाटक में कला और संस्कृति के बारे में कोई आवश्यक जानकारी नहीं मिलती। हमारी संस्कृति के अनुसार उसमें राजा उसका मंत्रिमंड़ल आदि बातों के साथ-साथ शादी-ब्याह आदि बातें उसमें दिखाई देती हैं।

उर्वी और सूत तथा मागध के संवादों द्वारा तत्कालीन समाज में गीत और संगीत गाने की कला थी इसका हमें पता चलता है। उर्वी गाती है -

''सोने की थाली सँजोए बैठी हूँ मैं।
पर कोई आता नहीं।
आता नहीं जीमने वाला ...
सोने की थाली और ये दमकती कटोरियाँ
भरा है जिनमें लबालब रस का सागर....
पर कोई आता नहीं, आता नहीं
रस का लालची, छूता नहीं।''[45]

iii. शारदीया -

'शारदीया' नाटक में तत्कालीन समाज में व्याप्त कला और संस्कृति के नमूने हमें देखने को मिलते हैं। नाटककार को नाटक लिखने की प्रेरणा भी तत्कालीन कला को देखकर ही मिली।

नाटककार ने प्राक्कथन में लिखा है - ''कुछ वर्ष हुए मुझे नागपुर म्यूजियम में एक असाधारण वस्त्र देखने को मिला। उसकी लंबाई पाँच गज से कुछ अधिक -यानी एक साड़ी के बराबर है, किंतु वजन उसका केवल पाँच तोला है। कपड़े की बनाई अत्यंत महीन है। धवल रंग की इस साड़ी में कुछ ऐसी आभा है जो आजकल के वस्त्रों में मुश्किल से पाई जाती है।''[46]

नाटक में उस पंचतोलिया साड़ी के बारे में बताया है। कारीगर अपने अंगूठे में सूराख करके उसमें धागा पिरोकर साड़ी बुनता है। इस से तत्कालीन समाज में साड़ी बुनने में जो कारीगर थे वह अत्यंत कुशल थे।

नाटक में कई प्रसंगों के द्वारा यह मालूम हो जाता है कि हमारी संस्कृति में जो पर्व और उत्सव है वह धूमधाम से मनाए जाते थे। नाटक में शरदोत्सव के बारे में बताया गया है। उस काल में नाचने-गाने की कला भी मौजूद थी। यह भी कई प्रसंगों के द्वारा हमें मालूम हो जाता है। जैसे शर्जेराव ने अपनी बेटी की संगीत शिक्षा तथा सिंधिया के मनोरंजन के लिए रहीमन नाम की नर्तकी को नियुक्त किया गया था।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के बाद यही कहा जा सकता है कि कोणार्क नाटक में नाटककार ने जितना देशकाल वातावरण प्रस्तुत किया है वह मूल कथानक के अनुकूल और उचित है। समस्त कथावस्तु कोणार्क मंदिर के प्रांगण में घटती है।

'कोणार्क' नाटक के प्रत्येक अंक के पहले वाचिकाएँ और सूत्रधार आते हैं और संगीत के साथ बोलते हैं और उसके द्वारा आगे अंक में घटनेवाली जो घटनाएँ हैं उनका वातावरण तैयार होता है। नाटक का आंतरिक और बाह्य वातावरण अत्यंत सजीव बन पड़ा है। आंतरिक वातावरण में घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण यथातथ्य हुआ है। उसमें पात्रों की मानसिक स्थिति भी उजागर होती है और कथावस्तु को आगे बढ़ाने के लिए एक अच्छा वातावरण तैयार हुआ है। पात्रों के हावभाव द्वारा उस पात्र के साथ-साथ दूसरे पात्र का चित्रण और उसके अंतर्द्वंद्व का भी चित्रण हुआ है। इसके कारण उचित वातावरण तैयार होकर कथा को गति मिली है।

बाह्य वातावरण में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा कला और सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण अत्यंत सजीव हुआ है। जिसके कारण नाटक की कथावस्तु , देशकाल एवं वातावरण प्रस्तुत हुआ है। प्रस्तुत नाटक 'कोणार्क' की पूरी कथावस्तु मंदिर के प्रांगण में घटने के कारण अधिक कुछ चित्रित करने का उसमें अवसर नहीं था।

'पहला राजा' इस नाटक में भी देश और काल वाचक संकेत संवादों के माध्यम से प्रयुक्त होते हैं। प्रस्तुत नाटक में प्रत्येक अंक के पहले सूत्रधार और नटी आकर हमें काल का पता बताते

हैं। साथ में ये हमें स्थान का पता देते हैं। जैसे प्रथम अंक के पहले सूत्रधार और नटी हमें ब्रह्मावर्त में स्थानेश्वर के निकट आज से लगभग चार हजार वर्ष पहले के वातावरण में ले जाते हैं। दूसरे अंक का प्रारंभ लगभग एक बरस के बाद हुआ है और स्थान वहीं है। तीसरे अंक का दूसरा हिस्सा दो बरस बीतने पर घटित होता है।

'पहला राजा' इस नाटक में भी आंतरिक और बाह्य वातावरण चित्रित किया है। उसमें पात्रों की मानसिकता, उनके हावभाव और अंतर्द्वंद्व के द्वारा आतंरिक वातावरण तैयार हुआ है। बाह्य वातावरण में सभी परिस्थितियों का चित्रण करके नाटक की वस्तु को गति देने का प्रयास किया है।

नाटक की पूरी कथावस्तु स्थानेश्वर के निकट ब्रह्मावर्त में ही घटती है। नाटक का संपूर्ण काल पौराणिक है और पात्रों के व्यवहार काल से मेल खाते हैं। प्रस्तुत नाटक की वातावरण निर्मिति भावात्मक न होकर केवल बौद्धिक स्तर पर होती है।

'शारदीया' एक ऐतिहासिक नाटक होने के कारण उसमें देशकाल और वातावरण का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। उसमें राजनीतिक परिवेश भाषा आचार-व्यवहार एवं रहन-सहन का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके कारण 'शारदीया' नाटक की कथा सहज संप्रेषणीय बनी है।

प्रस्तुत नाटक में देश और काल वाचक संकेत पात्रों के संवादों से तथा प्रत्येक दृश्य और अंक के पहले मिलते हैं। नाटक का प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का काल सन् 1794 की शरद पूर्णिमा और स्थान शर्जेराव घाटगे का मकान, दृश्य दो सन् 1795 की 10 मार्च, की संध्या है और स्थान खर्दा के युद्ध-स्थल में मराठा शिबिर का एक खेमा है। दृश्य तीन दूसरे दिन की संध्या और स्थान वही है। द्वितीय अंक में दृश्य एक खर्दा-युद्ध के लगभग एक मास उपरांत का है और स्थान पूना में शर्जेराव का मकान। दृश्य दो पाँच-छः महीने बाद ग्वालियर के किले का तहखाना है। तृतीय अंक में प्रथम दृश्य दो वर्ष बाद का है और स्थान पूना में शर्जेराव का मकान दृश्य दो-दो महिने बाद ग्वालियर के किले का तहखाना है।

प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक होने के कारण उसमें कथानुकूल दृश्य-संयोजन एवं रंग संकेत दिए हैं। इसके कारण मूल कथानक अत्यधिक प्रभावित हुआ है। पात्रों के संवाद नाटक की ऐतिहासिकता के साथ मेल खाते हैं। उसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ नाटक का बाह्य वातावरण निर्माण करती है। पात्रों की मानसिक स्थिति, उनके हावभाव और अंतर्द्वंद्व के द्वारा

नाटक में वास्तविकता और सजीवता लाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया है। परंपराएँ जीवन पद्धतियाँ, वेश-भूषा आदि के कारण वातावरण निर्मिति हुई है।

अंत में हम यही कहेंगे कि प्रस्तुत नाटक में ऐतिहासिक वातावरण को भव्य, वास्तविक, स्वाभाविक, सुंदर और कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास नाटककार ने किया है।

संदर्भ सूची

1. जगदीशचंद्र माथुर, कोणार्क, पृ. 72-73
2. वही, पहला राजा, पृ. 50
3. वही, शारदीया, पृ. 23
4. वही, कोणार्क, पृ. 55-56
5. वही, पहला राजा, पृ. 74
6. वही, शारदीया, पृ. 108
7. वही, कोणार्क, पृ. 56-57
8. वही, पहला राजा, पृ. 64-65
9. वही, शारदीया, पृ. 28
10. वही, कोणार्क, पृ. 37-38
11. वही, पहला राजा, पृ. 56
12. वही, शारदीया, पृ. 53
13. वही, कोणार्क, पृ. 60
14. वही, पहला राजा, पृ. 50-51
15. वही, शारदीया, पृ. 40-41-42
16. वही, कोणार्क, पृ. 50
17. वही, पहला राजा, पृ. 20
18. वही, शारदीया, पृ. 22
19. वही, कोणार्क, पृ. 77
20. वही, पहला राजा, पृ. 59
21. वही, शारदीया, पृ. 26
22. वही, कोणार्क, पृ. 57
23. वही, पहला राजा, पृ. 84

24. जगदीशचंद्र माथुर, शारदीया, पृ. 35-36
25. वही, कोणार्क, पृ. 31-32
26. वही, पहला राजा, पृ. 46
27. वही, शारदीया, पृ. 112
28. वही, कोणार्क, पृ. 51
29. वही, पहला राजा, पृ. 45
30. वही, शारदीया, पृ. 50
31. वही, कोणार्क, पृ. 39-40
32. वही, पहला राजा, पृष्ठ 64
33. वही, कोणार्क, पृ. 68-69
34. वही, पहला राजा, पृ. 71
35. वही, शारदीया, पृ. 76
36. वही, कोणार्क, पृ. 41-42
37. वही, पहला राजा, पृ. 52
38. वही, पृ. 28
39. वही, कोणार्क (परिचय), पृ. 11
40. वही, पहला राजा, पृ. 56
41. वही, शारदीया, पृ. 14
42. गोविंद चातक-नाटककार जदीशचंद्र माथुर, पृ. 44
43. जगदीशचंद्र माथुर, कोणार्क, नृ. 21
44. वही, पृ. 26
45. वही, पहला रजा, पृ. 36
46. वही, शारदीया (प्राक्कथन), पृ. 5